IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय चित्रकला में रूप और भावाभिव्यंजना

सभी कलाआ में मन के भावों को मूर्त रूप देने की प्रणाली को संसार के समस्त रचनाकारों ने स्वीकारा है। प्राणी जगत ही नहीं वरन् वनस्पति व प”ाु जगत तथा प्रकृति की अर्थ”ाून्य वस्तुओं को भी इन रचनाकरों ने भावों से मंडित कर उसकी सार्वभौमिक भा”वत विद्यमानता को स्वीकार किया है। अन्य दे”ाों ने जहाँ इनका विचार साधारण रूप में हुआ है, वहाँ भारत में 'रस' के अन्तर्गत इनका विचार किया गया है। भारतीय दृश्टिकोण के अनुसार 'रस' कला का भाुद्ध स्वरूप है।

वेदों में रस भाब्द का सर्वप्रथम अर्थ वनस्पति–सार के रूप में मिलता है। भाारीरिक व मानसिक स्फूर्ति की परिचायक 'सोम' नामक औशधि के आस्वाद रूप में भी रस का प्रयोग हुआ है। "साम को प्राण तत्व कहा गया है।"[1]

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सर्वव्याप्त प्रकृति की प्रवृत्तियाँ ही गुण या भाव है, जो कला रसास्वादन में योगदान करते हैं। ये गुण या भाव तीन हैं – सत्व, रज और तम, जो रसों की मूल भित्तियाँ हैं। ये गुण परम देव के सृश्टि सिद्धान्त ह जो क्रम”ाः विश्णु, ब्रह्मा व रुद्र से सम्बद्ध हैं और इनके अपने–अपने प्रतीक रंग व गृह भी हैं।

तत्प”चात् उपनिशद् काल में रस द्रव्य–जन्य देह–धातु और भाक्ति अर्थात् आयुर्वेद का रस हो गया । रामायण और महाभारत में कहीं–कहीं रस का प्रयोग वाणी या भाब्द अर्थ हेतु काम व स्नेह के रूप में हुआ है।

वेदोत्तर काल में भरतमुनि के नाट्य भाास्त्र में 'भावयति इति भाव' की सुप्रसिद्ध युक्ति के द्वारा बताया ह कि "भाव वही है जिसका भावन हो। भाव से ही रस की अनुभूति होती है ।"[2] भाव के रस में रूपांतरण की क्रिया को भरतमुनि ने निम्नलिखित रस–सूत्र द्वारा बताया है –

"विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगद्रस निश्पत्ति"[3]

अर्थात् विभाव (आलम्बन तथा उद्दीपन), अनुभाव (आंगिक, वाचिक और सात्विक) तथा व्यभिचारी (तैंतीस) भावों के संयोग से द"ीक के हृदय में रस की निश्पत्ति होती है। भरतमुनि ने भावों को दो भागों में बॉटा है –

(1) स्थायी भाव :

जो रस का आधार है तथा सहृदयों में वासना या संस्कार रूप में विद्यमान रहते हैं । इनकी संख्या आठ है –रति, हास, भाोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय और इनसे सम्बन्धित रस की संख्या भी आठ है –

श्रृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः ।

वीभत्स्याद्भुत संज्ञो चेत्यश्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।"[4]

अर्थात् श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत।

(1) संचारी या व्यभिचारी भाव :

जो भाव स्थायी भाव के कारण उत्पन्न होकर संचरण करते हैं उन्हें संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं। इनकी संख्या तैंतीस है।

रस के उत्पादक या कारक विभाव हैं जिनके दो भेद हें –आलंबन व उद्दीपन। भावों के प"चात् जागृत, अनुभूति अनुभाव हैं, जो आंगिक, वाचिक व सात्विक चेश्टाओं द्वारा अभिव्यक्त होता है।

कला में अभिव्यंजना प्रधान होती है जो भाव का आव"यक गुण है। कलाकार की आंतरिक अनुभूतियाँ, अनुभव और संवेग जब कलाकृति की रचना करते हैं तब र्प्यावरण और माध्यम का प्रभाव अभिव्यंजना का रूप प्रस्तुत करते हैं। संक्षेप मं "अभिव्यंजना का तात्पर्य अभिव्यंजित अर्थात् आंतरिक को बहिर्गत बनाना है।"[5]

भावों की अभिव्यंजना हेतु कला अपनी भाशा, व्याकरण, वि"ाश्ट विधि तथा माध्यम से बोलकर कलाकृति में प्राण–प्रतिश्ठा करती है। वाचस्पति गैरोला के अनुसार "भावाभिव्यंजना के दो रूप हैं –प्रकट और प्रच्छन्न। प्रकट भाव रूप को हम ऑखों से पकड़ सकते हैं परन्तु उसके प्रच्छन्न रूप को व्यंजना के द्वारा अनुभव कर सकते हैं।"[6]

वात्स्यायन के कामसूत्र के टीकाकार य”ाोधर पंडित ने चित्र के छः अंगों का वर्णन इस प्रकार किया है –

> “रूपभेदा प्रमाणानि भावलावण्य याजनम् ।
>
> सादृ”य वर्णिका भंग इति चित्र ‘ ाडंगकम्।।”[7]

उनके अनुसार जिस पकार मानव भारीर के विभिन्न अंग पृथक होकर भी एक दूसरे के सहयोगी हैं, उसी प्रकार चित्र के छः अंग मिलकर चित्र में जीवन का संचार करते हैं।

इन छः अंगों के तीन पक्ष हैं –प्रथम चाक्षुश प्रभाव, द्वितीय मन तथा तृतीय तकनीक से सम्बन्धित। रूपभेद, लावण्य योजना व सादृ”य प्रथम, भाव द्वितीय तथा प्रमाण, वर्णिका भंग तृतीय पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।

‘रूपभेद’ रूपों की भिन्नता, स्पश्टता, वि”ाश्टता और निजता का बोध ह। ‘प्रमाण’ आकारों की लम्बाई, चौड़ाई, निकटता–दूरी का आनुपातिक ज्ञान है। ‘भाव’ कलाकृति का आंतरिक, मानसिक व आध्यात्मिक आयाम ह। ‘लावण्य योजना’ आकृति में सौन्दर्य और माधुर्य लाने का प्रयत्न ह। ‘सादृ”य’ आकृति का यथार्थ वस्तु से रूप साम्य, प्रभाव साम्य एवं धर्मसाम्य है तथा वर्णिका भंग तूलिका एवं रंगों का कु”ालतम प्रयोग है। “भारतीय चित्रकला की दृश्टि से जिस चित्र में ‘ ाडंग वर्तमान न हो, वह चित्र कहलाने योग्य नहीं होता, केवल चित्राभास मात्र होता है।“[8]

चित्र में अभिव्यंजना की व्याख्या करते हुए डॉ0 हरद्वारी लाल भार्मा ने तीन तत्वों का उल्लेख किया है–“[9] –1. रूप, 2. भोग, 3. अभिव्यक्ति। यहाँ ‘भोग’ कलाकृति में प्रयोग होने वाले कला तत्व, माध्यम तथा तकनीक है। विभिन्न कला–तत्वों, माध्यमों तथा तकनीकों द्वारा सृजित आकार ‘रूप’ है तथा उस रूप का अर्थसार या विशय–वस्तु अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार यह स्पश्ट है कि चित्र में विशय–वस्तु के आधार पर भावाभिव्यंजना होती है, परन्तु चित्र–निर्माण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले कला–तत्वों, माध्यमों, तकनीका भावों, प्रतीकों तथा अन्य उपादानों का पूर्ण योगदान होता है।

‘ ाडंगों में प्रथम तथा कला तत्वों में द्वितीय कारक रूप अंगों का संतुलित और लयात्मक विन्यास है जो अखण्ड है और कला में प्राण तत्व भी है। ‘ ाडंगों

में प्रथम अंग 'रूप' की चाक्षुश सत्ता है। यह रूप रूप में विभिन्नता, रूप का मर्मभेद अथवा रहस्योद्घाटन भी है। रूप में छः तत्वों की समाहिती है – रेखा, आकार, आकृति, वर्ण पोत व अन्तराल । इनमें रेखा रूप की सीमा निर्धारण, आकार–क्षेत्र का विस्तार, आकृति–संरचना, वर्ण दृश्टिगत रंगत, मानव सघनता, पोत–सतही गुण तथा अन्तराल क्षेत्र होता है। रूप के सभी तत्व मिलकर उसमें अन्तर्निहित भाव की व्यंजना करते हैं। इस प्रकार रूप चाक्षुश बिम्ब ही नहीं अपितु भाव भी है।

भारतीय भाास्त्रों में भारीर के रूपभेदों को सर्वाच्च प्राथमिकता दी गयी है, क्योंकि भाारीरिक अवयवों की भंगिमा, गति और भावाभिव्यक्ति में निकट का सम्बन्ध है। "अंग–भंगिमा का अर्थ है अभिव्यंजक गति।"[10] अभिव्यंजक अंग–भंगिमा संवेग व भावों का प्रका''ान करती है। ये भंगिमायें प्रत्येक प्राणी में जीवन–''ाक्ति का प्रतीक भी हैं। अंग–प्रत्यंग अभिनय या संचालन के माध्यम से आंतरिक भावों की अभिव्यंजना का संकेत प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। 'चित्रसूत्र– में नृत्य को परम् चित्र कहा गया है क्योंकि नृत्य में ही भाारीरिक मुद्राओं के सर्वाधिक और स्पश्ट द''ान होते हैं।

नृत्य कला को चित्रकला में मूर्तरूप देने की प्रक्रिया का वर्णन समरांगण सूत्रधार में किया गया है –

"हस्त मुद्रायें अर्थ का द्योतन करती हैं और दृश्टियाँ उसका प्रतिपादन अथवा व्यंजना। इस प्रकार अभिनय के माध्यम से सभी कुछ सजीव सा प्रतीत होता है। आंगिक अभिनय, चित्र और मूर्तिकला में ये सभी तत्व समान रूप से रहते हैं।"[11]

यहाँ पर रूप को निम्नलिखित चार खण्डों में बाँट कर अध्ययन किया जाना समीचीन होगा –

अ– भाारीरिक भंगिमा

ब– नेत्र–भंगिमा

स– हस्त मुद्रा

द– पाद–मुद्रा

(अ) भाारीरिक भंगिमा :

मानसिक स्थिति से प्रभावित होकर मानव भारीर की मांसपेि”ायों में तनाव उत्पन्न होता है और उनकी स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। ”समरांगण सूत्रधार, मानसोल्लास, ि”ाल्परत्न तथा विशणुर्ध्मोत्तर पुराण में भाारीरिक भंगिमाओं के नौ प्रकार बतलाये गये हैं।”[12]

1. श्रृज्वागतम् – भारीर के अंग प्रत्यंग का पूर्ण अंकन।
2. अनृजु – प्रथम का विपरीत।
3. साँचीकृत भारीर – झुका हुआ अथवा नमित तन्वंग
4. अर्द्धविलोचनम् – चेहरे के अर्द्धभाग का अंकन, जिसमें एक आँख दीख पड़े।
5. पा”र्वागतम् – एक तरफ वाला ।
6. परावृतम् अथवा गण्डपरावृतम् – जिसमें एक कपोल दीख पड़े
7. पृश्ठागतम् – पृश्ठप्रान्त प्रधान आकृति ।
8. परिव्रतमृ – कटि से ऊपर गोलाई के पास घूमी हुई आकृति।
9. समानतम् – झुके हुए पूर्ण भारीर की आकृति।

इन नौ प्रकार की आकृतियों के अतिरिक्त भारतीय कलाचार्यों ने अन्य चार प्रकार की भंगिमाओं का उल्लेख भी किया है–समभंग, अभंग, त्रिभंग, अतिभंग।

(ब) नेत्र–भंगिमा :

मन के भावों को व्यंजित करने का सर्वोपरि माध्यम नेत्र–भंगिमायें हैं। भारतीय सौन्दर्य”ाास्त्र में रस व रसपूर्ण दृश्टि दोनों का भावाभिव्यक्तिकरण में बहुत महत्व है। भाव, हस्त एवं पाद मुद्रायें, रस दृश्टियों ओर रस एक दूसरे के पूरक रूप में दृश्टिगोचर होते हैं। समरांगणसूत्रधार में रस–चित्रण के संदर्भ में विभिन्न रसों से सम्बन्धित रस–दृश्टियों का स्पश्ट उल्लेख मिलता है। रस–चित्र तथा रस–दृश्टियों का घनिश्ठ सम्बन्ध है। उसमें 18 रस दृश्टियों की व्याख्या की गयी है – ‘शृंगार रस’ से सम्बन्धित ललिता, दृश्टा, विभ्रमा, संकुचिता, हास्य रस’ से सम्बन्धित विकसिता, भयानक रस से सम्बन्धित विकृता, विहला, भांकिता जिब्हा, ‘”ाान्त रस’ से सम्बन्धित योगिनी, मध्यस्था, स्थिरा, ‘वीर रस’ से सम्बन्धित दृश्टा तथा करुण रस’ से सम्बन्धित दीना, विहला व भांकिता दृश्टि।

चित्रसूत्र में भी पाँच प्रकार के नेत्रों का उल्लेख किया गया है– 1. चापाकार, 2. मत्स्योदर, 3. उत्पल पत्र, 4. पद्मपत्र, 5. भाराकार।

उक्त नेत्र भंगिमायें क्रम”ा: योगी, कामी, सात्विक, भयभीत तथा व्यथित भाव की व्यंजक होती है। “इनके अपने–अपने रंग तथा सादृ”य भी हैं । योद्धा तथा नारी के नेत्र बहुधा धनुशाकार, प्रेमिकाओं और कामोन्मत्त पुरुशों के मत्स्योदराकार सात्विकल पुरुशों के उत्पल पत्राकार, डरे हुए तथा रोते हुए व्यक्तियों के पद्मपत्राकार आर व्यथित एवं कुपित व्यक्तियों के भाराकृति वाले होते हैं। ये नेत्र भाव दीप्ति भी करते हैं जैसे– मत्स्योद्राकार में संभोग शृंगार, उत्पल पत्राकार में भाांत, पद्म पत्राकार में भयानक तथा वीभत्स और भाराकार में करुण तथा रौद्र ध्वनित होता है।”[13]

भरत मुनि के नाट्य”ाास्त्र में भी अभिनय के अन्तर्गत दृश्टि के अभिनय को तीन प्रकार से वर्णित किया है –1. रस दृश्टियाँ 2. स्थायी भाव रस–दृश्टियाँ तथा 3. संचारी भाव रस–दृश्टियाँ। आठ रसों से सम्बन्धित आठ रस–दृश्टियाँ–कांत, हास्य, करुण, रौद्री, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत रस दृश्टि, आठ स्थाई भावों से सम्बन्धित स्निग्ध (रति–जन्य), हृश्ट (हासजन्य), दीन (”ाोक–जन्य), क्रुद्ध (क्रोध–जन्य), दृप्त (उत्साह–जन्य), भयान्वित (भय–जन्य), जुगुप्सित (जुगुप्सा–जन्य) और विस्मित (विस्मय–जन्य) रस–दृश्टि तथा व्यभिचारी भावों से सम्बन्धित बीस दृश्टियाँ बतलाइ गयी हैं।

स– हस्तमुद्रा :

विभिन्न भारीरिक एवं नेत्र भंगिमाओं के साथ–साथ हस्त एवं पाद–मुद्रायें भी भावाभिव्यक्ति के सफल माध्यम हैं। कोहनी, कलाई व अंगुलियों के विभिन्न मोड़ भावाभिव्यंजना हेतु बोलने की क्षमता रखते हैं। नाट्य”ाास्त्र, चित्रसूत्र तथा समरांगणसूत्रधार में अनेकों प्रकार की हस्त–मुद्राओं की चर्चा की गयी है, जिसे मोटे तौर पर तीन वर्गों में बॉटा गया है – 1. असंयुत, 2. संयुत, 3. नृतहस्त ।

असंयुत हस्त किया वह है जिसमें अभिनय एक हाथ से किया जाता है। ऐसी क्रियायें चौबीस मानी गयी हैं। संयुत हस्तकिया वह है जिसमें अभिनय दोनों हाथों से किया जाता है। ऐसी कियायें तेरह हैं। ये सभी मिलकर सैंतीस अभिनय हस्त हैं। नृत हस्त किया वह है जो प्रात: नृत्य के अन्तर्गत सौन्दयर्धिान के लिए किया जाता है। नृत हस्त कियायें सत्ताईस मानी गयी हैं।[14]

भरतमुनि ने भी नाट्य”ाास्त्र में नृत्य से सम्बन्धित पाँच प्रकार की हस्त कियायें बतलायी हैं – प्रथम हस्त–तल को ऊपर किये उत्ताल हस्त किया, द्वितीय हस्त–तल को नीचे किये अधास्तल हस्त किया’ तृतीय तिरछी दि”ाा में

किया गया हाथ तिर्यक, चतुथ हस्तांगुलियों के अग्रभाग को ऊर्ध्वमुख किये 'ऊर्ध्व हस्त क्रिया' तथा इसके बिलकुल विपरीत पंचम अधोमुख हस्तक्रिया। भिन्न–भिन्न भावों तथा अन्तद"ााओं का द्योतन करने वाली इन हस्त मुद्राओं व क्रियाओं का सर्वश्रेश्ठ चित्रण अजंता के भित्ति चित्रों में देखने को मिलता है।

द– पाद मुद्रा :

भारतीय चित्रकला में नृत्य के अनुरूप हस्त–मुद्राओं के साथ ही साथ पाद–मुद्राओं का प्रयोग भी भावाभिव्यंजना हेतु दृश्टिगोचर होता है, जिसका संकेत नाट्य"ाास्त्र तथा चित्रसूत्र में पद की क्रिया के पंचविध रूप में प्राप्त होता है –"उदधटिट्त, सम, अग्रतलसंचर, अंचित और कुंचित।"[15] ये पद क्रियायें पाद की विभिन्न मुद्राओं से सम्बद्ध हैं।

"नृत्य से सम्बन्धित पद क्रियाओं के अतिरिक्त पैरों की आकृतियों तथा उनके विभिन्न मोड़ों के आधार पर भी पाद–मुद्राओं के भिन्न–भिन्न वर्ग निरुपित हुए हैं।"16

समायतम् – जिसमें दोनों पैर सीधे खड़े हों।

मण्डलम् – जिसमें पैर चक्राकृति में हों।

बैसाख – जिसमें एक पैर सीधा और दूसरा चंचल हो। इसमें दोनों पैरों का अंतर बारह अंगुलिभर रहता है।

आलीढ़ – जिसमें दाहिना घुटना आगे और बाँया पैर पीछे हो।

प्रत्यालीढ़ – जिसमें बॉय पैर का घुटना आगे और दायाँ पैर पोछे की ओर हटा हुआ हो।

भारतीय धार्मिक परंपरा में 'आसन' अथवा बैठने की मुद्रा रूप विन्यास को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसका प्रचलन अति प्राचीन है। इस आसनों में से चित्रकला में पद्मासन, ललितासन, मद्रासन, ताण्डवासन, नृत्यासन, उमलिगासन तथा यवायासन पाद–मुद्रओं का चित्रण प्रमुख रूप से किया गया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1 डॉ0 जगदीश चंदिके"ा : वैदिककालीन रूपंकर कलाएँ (प्राणों वै सोम) : पृ0 119.

2 राजेन्द्र बाजपेयी : सौन्दर्य : पृ0 154

3 डॉ0 सुरिन्द्र नन्दा : रस सिद्धान्त तथा समाज"ाास्त्रीय अध्ययन : पृ0 30

4 डॉ0 नगेन्द्र : रस–सिद्धान्त : प0 159.

5 श्रमेश कुंतल मेघ : अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा : पृ0 250.

6 डॉ0 स्वर्णलता मिश्रा : कलातीर्थ–अजंता : पृ0 51.

7 सम्मेलन पत्रिका : (कला अंक) : पृ0 399.

8 डॉ0 कुमार विमल : कला विवेचन : पृ0 96.

9 डॉ0 हरद्वारी लाल भार्मा : सौन्दर्य भाास्त्र : पृ0 62.

10 डॉ0 रामलखन भाुक्ल : भारतीय सौन्दर्य का तात्विक विवेचन : पृ0 184

11 डॉ0 नगेन्द्र : भारतीय सौन्दर्य भाास्त्र की भूमिका : पृ0 122–123.

12 डॉ0 कुमार विमल : कला–विवेचन : पृ0 96–97.

13 रमे"ा कुन्तल मेघ : अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा : पृ0 79.

14 डॉ0 रामलखन भाुक्ल : भारतीय सौन्दर्य"ाास्त्र का तात्विक विवेचन : पृ0 181.

15 वही : पृ0 179.

16 डॉ0 कुमार विमल : कला–विवेचन : पृ0 97–98.